प्रवचन–4 वचनामृत–31 से 33

(वचनामृत का) 31 वाँ बोल। 30 (बोल) चले हैं। **सम्यग्दृष्टि को ज्ञान–वैराग्य की ऐसी शक्ति प्रगट हुई है...** (ये) बहिन के अन्दर के (अन्तर के) वचन हैं। सम्यग्दृष्टि उसको कहते हैं कि जिसको आत्मा आनन्दस्वरूप, अखण्ड अभेदस्वरूप... सुबह कहा था न अनुभूति... आत्मा चिदानन्दस्वरूप है, उसका अनुभव हो, ऐसे अनुभवपूर्वक प्रतीति हो, वे शुरुआत में सम्यग्दृष्टि जीव कहलाते हैं। प्रथम-प्रारम्भ का सम्यग्दृष्टि जीव कहा जाता है। (धर्म की) शुरुआत वहीं से होती है।

पहले वह अखण्ड अभेद चीज़ है, उस पर दृष्टि पड़ने से पर्याय और राग गौण होने से शुद्ध चैतन्य का अनुभव होता है, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है, उसको सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहा...! उस सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-वैराग्य की ऐसी शक्ति प्रगट होती है। (अर्थात्) आत्मा का ज्ञान और पुण्य-पाप के भाव से विरक्त-वैराग्य (प्रगट हुआ है)। वैराग्य की यह व्याख्या है।

'समयसार' के पुण्य-पाप अधिकार में यह अधिकार लिया है कि वैराग्य किसे

कहना? कि अन्तर में शुभ और अशुभराग होता है, उससे विरक्त हो (अर्थात्) रक्त है, वह विरक्त हो और स्वसन्मुख का ज्ञान हो, इसे यहाँ वैराग्य कहा जाता है। आहा...हा...! ऐसी व्याख्या है। सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-वैराग्य की (ऐसी शक्ति प्रगट हुई है)।

यह तो जिसको जन्म-मरण का अन्त लाना हो, इसकी बात है। वरना अनन्त काल से जन्म-मरण किया करता है। अशुभभाव करे तो नरक, निगोद में जाता है। शुभभाव करे तो कोई स्वर्गादि या इस धूल का सेठ आदि बनता है। परन्तु वह पुनः चार गति में भटकता है। चौरासी के अवतार में नरक, निगोद और एकेन्द्रिय में जाता है। आहा...हा...! इससे (बचने के लिये) जिसको धर्म की गरज़ है, उसे प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहिए और यह सम्यग्दर्शन होने पर, ज्ञान और वैराग्य की ऐसी शक्ति प्रगट हुई हो। आहा...हा...!

आत्मा की ओर धुन लगी तथा राग की ओर का वैराग्य हुआ, उसको यहाँ ज्ञान और वैराग्य कहते हैं। समझ में आया? आहा...! भगवान आत्मा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु! इसका जिसे ज्ञान और दृष्टि हुई है, उसको ज्ञान कहते हैं। और पुण्य-पाप के शुभ-अशुभ भाव से विरक्त होना, उसे वैराग्य कहते हैं। (सम्यग्दृष्टि को) ऐसी ज्ञान और वैराग्य की शक्ति प्रगट हुई है।

गृहस्थाश्रम में होने पर भी,.... सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में होने पर भी, आहा...हा...! श्रेणिक राजा! भगवान के समय में हो गये हैं। जिसको हज़ारों राजा चँवर डुलाते थे, ऐसा बड़ा राजा था, श्रेणिक राजा...! हज़ारों रानियाँ थी। 32 हज़ार राजा चँवर डुलाते थे, इतना बड़ा राज्य! किन्तु मुनि के पास एकबार... एक मुनि थे, ध्यान में थे, तब सर्प को–मरे हुए सर्प को (श्रेणिक राजा ने) उनकी गर्दन में डाला। (राजा) बौद्धधर्मी था। गले में डाल दिया, इसमें लाखों चींटियाँ हुई। घर आकर पत्नी को कहा – चेलनारानी समकिती हैं। स्त्री है परन्तु आत्मज्ञानी हैं। उनको कहा कि, 'मैं तेरे गुरु के (गले में) साँप डालकर आया हूँ! जो कि उसने निकाल दिया होगा।' चेलना कहती है, 'अन्नदाता!' पति को कहती है 'मेरे गुरु ऐसे नहीं होते, जो उपसर्ग आये, उसे निकाल दें ऐसे नहीं होते। चलो! आपको देखना हो तो।' (राजा को) लेकर जहाँ (मुनि के पास) आते हैं, वहाँ मुनि ध्यान में, अतीन्द्रिय आनन्द के सागर में अन्दर डूब गये हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में; यह सर्प है या नहीं,

उपसर्ग आया है या नहीं, करोड़ों चींटियाँ हो गयी हैं या नहीं?–इसकी भी जिन्हें खबर तक नहीं। ऐसे ध्यान में थे। चेलना आयी, श्रेणिक आये– दोनों आयें–पति-पत्नी। चेलना ने कहा कि 'देखो! स्वामी! यह मुनि ध्यानस्थ हैं। इस उपसर्ग का तो उन्हें पता भी नहीं!' (बाद में) मरे हुए सर्प को निकाला और फिर मुनि ध्यान में से बाहर आये। देखा कि ये राजा और रानी आये हैं। तब राजा ने कहा कि, 'साहब! ओहो...हो...! ऐसा आपका ध्यान!! कि सर्प डाला और करोड़ों चींटियाँ हो गयी, फिर भी आपका बाहर में लक्ष्य नहीं! आनन्द के धाम में (आप) मस्त हैं तो प्रभु! आपका मार्ग क्या है?'

ऐसा बौद्धधर्मी मिथ्यादृष्टि श्रेणिक राजा था। उसकी चेलनारानी समकिती थी। वे समकित प्राप्त कराने के लिये मुनि के पास ले गये। वे मुनि थे, ऐसा काम किया था, उसको फिर उपदेश देते हैं। उपदेश देते हैं, वहाँ वे समकित पाते हैं! आहा...हा...! ऐसा नहीं कि इसने इतना पाप किया, इसलिए नहीं हो सकता। आत्मा अन्दर तैयार है।

सुबह कहा था। महावीर भगवान का (पूर्व का) दसवाँ भव सिंह का (था)। वह सिंह ऐसे हिरन को खा रहा था। उस समय दो मुनि आकाश से उतरे और उन्होंने कहा, 'अरे...! सिंह! तू कौन है? तेरा आत्मा तो महावीर का आत्मा (है)। दसवें भव में तू तीर्थंकर होनेवाला है।' अब वह भाषा मुनि ने कैसी कही होगी, और सिंह ने कैसे समझ लिया होगा!! आ...हा...हा...! उस सिंह की कितनी पात्रता होगी कि (वे) मुनि ऊपर से उतरे और (उनकी) भाषा कौन सी होगी? वह सिंह समझ गया!! 'यह क्या किया तूने? तेरा आत्मा तीर्थंकर का आत्मा है। दसवें भव में तू महावीर होनेवाला है!' ऐसा जहाँ सुना वहाँ... पेट में हिरन के माँस के टुकड़े थे, फिर भी जहाँ (यह) सुना कि भीतर से पलटा खा गया। अन्दर में से एकदम पलटा खा गया!! चैतन्यमूर्ति आत्मा! अरे...! मुनिराज ने भी मुझे बहुत उपदेश किया। इतना पापी प्राणी भी क्षण में समकित पाया!! इसके लिये कोई काल की अवधि की जरूरत नहीं। एक अन्तर्मुहूर्त–क्षण में भी पर की दिशा तरफ की जो दशा है,... पर की दिशा तरफ की दशा अर्थात्? राग और द्वेष की दशा पर की दिशा तरफ है; और सम्यग्दर्शन की दशा स्व तरफ है। आ...हा...हा...! समझ में आया? दोनों की दशा की दिशा में अन्तर है। राग और द्वेष करनेवाले के लक्ष्य (की) दिशा बाहर की ओर है,

और सम्यग्दर्शन पाने के काल में उसकी दशा की दिशा द्रव्य पर जाती है। त्रिकाली चैतन्यमूर्ति पर उस क्षण में (लक्ष्य) गया और सिंह (की) आँखों से आँसू की धारा छूट रही थी। आ...हा...हा...! यह पाप...! ऐसे अन्दर में उतरकर उसी क्षण समकित पाया है। अतः समकित पाने के लिये अमुक प्रकार की शैली चाहिए या अमुक प्रकार की बहुत निवृत्ति चाहिए, ऐसा कुछ है नहीं। उसी क्षण ज्यों आत्मा की ओर अन्दर झुका, तो यहाँ कहते हैं कि (वहाँ वह) सम्यग्दृष्टि हुआ। आहा...हा...!

श्रेणिक राजा...! वहाँ समकित को प्राप्त हुआ और फिर भगवान महावीर परमात्मा के समवसरण में गया (और) वहाँ उसने तीर्थंकरगोत्र का बन्धन किया–शुभभाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधा। परन्तु उन्हें पहले नरक की आयु का बन्धन हो चुका था–मुनि पर सर्प डालकर सातवीं नरक की आयु का बन्धन हो चुका था। परन्तु जब आत्मज्ञान और धर्म अन्दर में एक क्षण में (प्रगट किये), आहा...हा...! (वहाँ) सातवीं नरक की स्थिति तोड़ डाली! सम्यग्दर्शन हुआ और चौरासी हज़ार वर्ष की स्थिति रह गयी।

लड्डू (बनाया) हो। उसमें जो घी, शक्कर, गुड़ और आटा डाला हो, उसमें से घी निकालकर दूसरा कुछ नहीं होता। वह तो घी गया सो गया। वह तो लड्डू खाना ही पड़े। वैसे नरक की आयु का बन्धन हो गया वह तो उसे भोगना ही पड़े। स्थिति घटाकर–33 सागर की थी, वह चौरासी हजार वर्ष की रखी। लेकिन उस लड्डू में से घी अलग करके वह पूड़ी तले या आटा अलग करके रोटी हो, ऐसा नहीं बन सकता। वैसे नरक-आयु का बन्धन नहीं बदलता, स्थिति बदल गयी। चौरासी हज़ार वर्ष की स्थिति रह गयी। अभी पहली नरक में है। समकिती हैं, नरक में गये हैं। अगली काल चौबीसी में तीर्थंकर होनेवाले हैं। वहाँ से निकलकर प्रथम तीर्थंकर होंनेवाले हैं। यह सारा प्रताप सम्यग्दर्शन का है। आ...हा...हा...हा...! ऐसा यहाँ कहते है।

मुमुक्षु : स्थिति का क्रम टूट गया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रमबद्ध ही हुआ है, टूटा कुछ नहीं। क्रमबद्ध में यह आया था। उनकी दृष्टि जहाँ द्रव्य पर गयी, तब क्रमबद्ध में उन्हें सम्यग्दर्शन हुआ। जहाँ अपने स्वरूप की दृष्टि में जाते हैं (वहाँ सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है)। भाई! परन्तु उस (स्वरूप का)

माहात्म्य कोई अलग चीज़ है। क्या हो? दुनिया ने सुना नहीं, दुनिया उस ओर के लक्ष्य के प्रेम में नहीं है। जगत के रस के रसिकजनों को आत्मा का रस क्या है? इसकी उसे खबर नहीं।

वह यहाँ आत्मा के रस में अन्दर उतरा, ऐसा श्रेणिक राजा, (उसने) तीर्थंकरगोत्र बाँधा। (अभी) नरक में गये हैं। परन्तु वहाँ से निकलकर प्रथम तीर्थंकर होनेवाले हैं। आहा...! यह सारा सम्यग्दर्शन का प्रताप है!! यह सम्यग्दर्शन–अभी चतुर्थ गुणस्थान (है)! श्रावक का पाँचवाँ और मुनि का छठ्ठा, यह तो कोई अलग प्रकार की बात है!! यह सम्प्रदाय के श्रावक कोई सच्चे श्रावक नहीं। वे सब हैं–सावज! राग को अपना माने वे सब सावज हैं। सावज अर्थात् सिंह। वह शिकार करता है विकारों का! विकार का शिकार करके विकार को खाते हैं। समझ में आया? आहा...हा...! लक्ष्मीचन्दभाई!

यहाँ तो ऐसी बातें हैं, बापू! आहा...हा...! यह तो मूल की बातें हैं। जिसका जन्म-मरण रहे, एक अवतार भी होगा इसमें से फिर अनेक अवतार होंगे। यहाँ से मरकर कहाँ जायेगा? आत्मा अनन्त काल रहनेवाला है। इस देह का नाश होगा परन्तु आत्मा अनादि-अनन्त काल रहेगा। (तो) रहेगा कहाँ? यदि दृष्टि राग और पुण्य पर पड़ी होगी, पाप पर पड़ी होगी तो दृष्टि मिथ्यात्व में रहेगी और मिथ्यात्व में रहेगी तो अनन्त नरक और निगोद के भव करेगा। मिथ्यात्व है, वही संसार है। मिथ्यात्व ही अनन्त जन्म-मरण का गर्भ है। उस गर्भ में से अनन्त भवों धारण होते हैं। आ...हा...हा...! इस मिथ्यात्व के गर्भ का नाश करके जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया, उसको ज्ञान-वैराग्य की शक्ति प्रगट हुई है, फिर (भले ही) वह गृहस्थाश्रम में हो।

श्रेणिकराजा गृहस्थाश्रम में थे। अरे...! भरत चक्रवर्ती...! समकिती थे, आत्मज्ञानी थे। उनके छोटे भाई बाहुबली भी समकिती थे, आत्मज्ञानी थे। फिर भी दोनों युद्ध में आ गये! राग है, आसक्ति है (परन्तु) अन्दर में भान है कि ये राग-द्वेष हैं, पाप है, मेरी कमज़ोरी है। यह मेरा स्वरूप नहीं। फिर भी दोनों लड़ाई में आ गये। बाहुबली को मारने भरत ने चक्र चलाया। परन्तु बाहुबलीजी चरमशरीरी थे, उसी भव में मोक्ष जानेवाले थे। तो उनका चक्र ने काम नहीं किया। चक्र वापिस मुड़ गया! बाहुबली पर छोड़ा था, वह चक्र वापिस भरत

के पास आ गया। क्योंकि चरमशरीरी जीव को चक्र लागू नहीं पड़ता। दोनों सगे भाई! सम्यग्दृष्टि...!! फिर भी युद्ध किया! तथापि अन्दर में सम्यग्दर्शन को नहीं भूले!! आ...हा...हा...! वह चीज़ क्या है, बापू! लोग बाहरी त्याग और बाह्य क्रियाकाण्ड में सर्वस्व मानते हैं परन्तु अन्दर की चीज़ कोई दूसरी है।

वह यहाँ कहते हैं कि **गृहस्थाश्रम में होने पर भी, सभी कार्यों में स्थित होने पर भी,...** (अर्थात्) सब कार्य होते हैं। व्यापार होता है, धन्धा होता है। अरे...! भरत को चक्रवर्ती का राज था! 96 हजार तो जिसको स्त्रियाँ थी (परन्तु) भीतर में निर्लेप हैं। आहा...! नारियल का गोला जैसे...! ऐसा नारियल (हो) उसका गोला पृथक् पड़े वैसे सम्यग्दृष्टि का आत्मा, राग व शरीर से गोले की तरह पृथक् पड़ जाता है। आ...हा...हा...! समझ में आया?

वह (सम्यग्दृष्टि) गृहस्थाश्रम में हो, **सभी कार्यों में स्थित होने पर भी,...** संसार के सर्व कार्यों में खड़ा होने पर भी, **लेप नहीं लगता,...** आ..हा...हा...!

मुमुक्षु : गुरुदेव! लेकिन पाप के कार्य करे तो भी उन्हें (लेप) नहीं लगता?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, पाप का कार्य हो तो भी उन्हें कुछ नहीं लगता। उस राग को जानते हैं कि यह मेरा स्वरूप नहीं। ऐसा है, भाई! पाप के–लड़ाई के परिणाम हुए तो भी जानते हैं कि यह मेरी जाति नहीं, यह तो पाप है। इससे अन्दर में निर्लेप हैं!!

मुमुक्षु : फिर तो हम करें तो भी कोई हरज़ा नहीं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की बात है। केशवलालभाई! यह तो सम्यग्दृष्टि की बात (है), बापू! सम्यग्दृष्टि की बात (है)। मिथ्यादृष्टि राग को अपना माने, वे तो पाप में पड़े (हैं)। वे तो नरक और निगोद में जायेंगे! आ...हा...हा...! यह तो सम्यग्दृष्टि (की बात चलती है)। पहला शब्द यही लिया है न!

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि को पाप छोड़ना, सम्यग्दृष्टि को पाप नहीं छोड़ना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कमज़ोरी होने से आता है। छोड़ना–नहीं छोड़ना, (वह तो) छूटा हुआ ही पड़ा है। मेरा वह है ही नहीं, मैं इसका कर्ता नहीं। वास्तव में वह (सम्यग्दृष्टि)

उसका कर्ता नहीं!! आ...हा...हा...! 'करे करम सो हि करतारा, जो जाने सो जाननहारा, जाने सो करता नहीं होई, करता सो जाने नहीं कोई।' यह राग आता है तथापि सम्यग्दृष्टि उसका कर्ता नहीं होता। सूक्ष्म बात है, भगवान! आ...हा...हा...हा...! वह राग का कर्ता नहीं होता, उसका ज्ञाता रहता है। ज्ञानस्वरूप में वो जानता है कि मैं ज्ञान और यह राग भिन्न चीज़ है। ऐसा अन्दर में भेदज्ञान (वर्त रहा है)। दो (के बीच) दरार पड़ गयी है। राग और आत्मा के बीच दरार–सन्धि पड़ गयी है। राग और आत्मा के बीच सन्धि है, दरार है। सम्यग्दर्शन होने पर उस दरार में दोनों अलग हो जाते हैं, फट से...! आहा...हा...हा...! उन्हें यह राग होने पर भी उसका अल्प बन्धन है। वह कहेंगे, देखो!

गृहस्थाश्रम में होने पर भी, सभी कार्यों में स्थित होने पर भी, लेप नहीं लगता, निर्लेप रहते हैं; ज्ञानधारा एवं उदयधारा दोनों भिन्न परिणमती हैं;... ज्ञानधारा और राग – दोनों धारा एकसाथ आती हैं। धर्मी है, अभी वीतराग नहीं हुआ, आत्मज्ञान हुआ है तो ज्ञानधारा भी साथ में है और रागधारा भी साथ-साथ ही है। आ...हा...हा...! यह बात (कैसे) बैठे?

ज्ञानधारा एवं उदयधारा दोनों भिन्न परिणमती हैं;... (अर्थात्) दोनों भिन्न रहते हैं, (दोनों) एक नहीं होते, आहा...हा...! जहाँ अन्दर में चैतन्य गोला–(चैतन्य) प्रभु को भिन्न पिछाना, उसको फिर राग के परिणाम आने पर भी, कहते हैं कि वह भिन्न ही रहता है। सूक्ष्म बात है! आहा...हा...! 'सम्यग्दृष्टि जीवो करे कुटुंब प्रतिपाल, अन्तरंग से न्यारो रहे, जेम धाव खिलावे बाळ।' (अर्थात् कि) बालक को उसकी माता स्तनपान कराती है..., स्वयं (बालक की) माता न हो, वह मर गयी हो, तब धायमाता (स्तनपान कराये तो) भी वह ऐसा नहीं मानती कि यह मेरा लड़का है। दूध पिलाये, सब काम करे लेकिन लड़का किसी और का है, ऐसा मानती (है)। वैसे धर्मी (को) आत्मज्ञान होने पर, राग की धारा होती हैं। उदयधारा कहा न? ज्ञानधारा होती है और उदयधारा (होती है), दोनों होती हैं। आहा...हा...! वीतराग होने पर केवल एक ज्ञानधारा होती है। मिथ्यादृष्टि हो, तब केवल कर्मधारा होती है। सम्यग्दृष्टि होता है, तब ज्ञानधारा और कर्मधारा दोनों होती हैं। समझ में आया? आ...हा...हा...!

सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा हो जाये, तब अकेला आनन्द और ज्ञानधारा रहती है। मिथ्यादृष्टि, राग को अपना मानकर, जब तक उसमें रस है, तब तक उसको केवल कर्मधारा–विकारधारा रहती है। सम्यग्दृष्टि हुआ, (पूर्ण) वीतराग नहीं हुआ, उसको दो धारा वर्तती हैं। अन्तर की ओर (ज्ञान) धारा होती है और बाहर की ओर के राग का विकल्प भी होता है। फिर भी वह विकल्प को अपना नहीं मानता और अपना जानकर अनुभव करता नहीं। आहा...हा...! 'करे करम सो ही करतारा' वह राग का कर्ता बने तो ही कर्ता (है), (परन्तु) वह कर्ता नहीं बनता, ज्ञाता रहता है। गज़ब बात है, बापू! आहा...हा...!

धायमाता किसी बच्चे को स्तनपान कराती हो, परन्तु उसे पता है कि यह लड़का बड़ा होकर मेरा पालन नहीं करेगा। यह तो पराया बच्चा है। सिर्फ स्तनपान कराने यहाँ लाया गया है। वैसे समकिती (को) सांसारिक कार्य के समय राग आता है, फिर भी यह राग मेरी चीज़ नहीं है, मैं उसमें नहीं आता, मेरे स्वरूप को छोड़कर–आत्मानुभव से निकलकर राग में एकाकार नहीं होता। सूक्ष्म बात है, प्रभु! मार्ग कोई न्यारा है, भाई!

यह तो भव का अन्त नहीं हुआ तो भव कर-करके मर जायेगा। मनुष्य मरकर पशु होगा, पशु होकर–तिर्यंच बनकर नरक में जायेगा और वहाँ पुनः अनन्त भव (करेगा)। नरक से निकलकर पुनः पशु होगा। सातवीं नरक में जाए, वह वहाँ से मरकर फिर से एक बार तो सातवीं नरक में जाता ही है, ऐसा पाठ है। बहुत पाप करके सातवीं नरक में गया हो, वह वहाँ से निकलकर तिर्यंच होता है, मनुष्य नहीं होता और वह तिर्यंच मरकर फिर से सातवीं नरक में ही जाता है। आहा...हा...! ऐसा सिद्धान्त वीतराग की वाणी में आया है। ऐसे पाप जिसने किये, उसको दो बार तो सातवीं नरक में जाना ही पड़ता है।

(श्रेणिक राजा) सम्यग्दृष्टि 84 हज़ार वर्ष की स्थिति लेकर (नरक में) गये हैं। लेकिन वहाँ से निकलकर अगली चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर होनेवाले हैं। वहाँ से निकलकर जब माता के गर्भ में आयेंगे, तब इन्द्र और इन्द्राणी (माता के) गर्भ को साफ करेंगे। (क्योंकि) प्रभु जो पधारनेवाले हैं! आहा...हा...हा...! अभी तो सम्यग्दर्शन है! वहाँ से निकलकर माता के गर्भ में पधारेंगे, तब इन्द्र-इन्द्राणी माता के गर्भ को साफ करेंगे। जैसे कोई महापुरुष आनेवाले हों, तब मकान साफ करते हैं, वैसे भगवान का आत्मा तेरे गर्भ

में आनेवाला है, इससे पहले साफ करते हैं। सवा नौ महीने गर्भ में रहते हैं, (उन) सवा नौ महीने तक रत्नों की धारा–वर्षा करते हैं। इन्द्र सवा नौ महीने तक रत्नों की धारा बरसाते हैं। आहा...हा...! और इसके छह महीने पहले भी रत्नों की धारा बरसती है। माता के गर्भ में आने से पहले भी, सम्यग्दृष्टि जीव था और तीर्थंकर होनेवाला है; इसलिए छह महीने पहले से रत्न बरसाते हैं। पन्द्रह महीने तक रत्नों की वृष्टि बरसती है! आहा...हा...!

उनका जन्म होता है, तब इन्द्र कहते हैं, 'माता! यह जगत का पिता है! यह केवल तेरा पुत्र नहीं है (परन्तु) जगत का तारणहार है! माता! इसका ख्याल रखियेगा!' (वहाँ) एक देव को रखते हैं। माता के गर्भ में आवे तब, उनकी सँभाल के लिये उसके साथ एक देव रखते हैं। यह सारा सम्यग्दर्शन का प्रताप है!! आ...हा...हा...! यह सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, बापू! यह यहाँ कहते हैं। उसको (सम्यग्दृष्टि को) **ज्ञानधारा एवं उदयधारा दोनों भिन्न परिणमती हैं; अल्प अस्थिरता है...** देखा? अस्थिरता है, राग आता है परन्तु वह अल्प है। उन्हें अनन्तानुबन्धी का कषाय नहीं होती। अनन्त संसार बढ़ा दे–ऐसी कषाय उनको नहीं होती, आहा...! **अल्प अस्थिरता है...** वे लड़ाई करे तो भी अल्प अस्थिरता है। अन्दर में समकित हुआ, तब अनन्तानुबन्धी गयी और आत्मा के आनन्द का अनुभव-वेदन वर्तता है।

वह अपने पुरुषार्थ की कमज़ोरी से होती है,... ऐसा वे जानते हैं। मेरे पुरुषार्थ की कमज़ोरी की वज़ह से यह राग थोड़ा उत्पन्न होता है, परन्तु यह मेरी चीज़ नहीं। मैं तो आनन्दस्वरूप हूँ। ऐसा सम्यग्दृष्टि को प्रथम भूमिका में होता है। आ...हा...हा...! इसके बिना सब थोथा है। सम्यग्दर्शन के बिना जो भी बाह्य प्रवृत्ति और क्रियाकाण्ड में पुण्यादि होता है, वह सब संसार है, धर्म नहीं। धर्म तो यह सम्यग्दर्शन होता है, तभी शुरु होता है। वह यहाँ कहते हैं।

अपने पुरुषार्थ की कमज़ोरी से होती है, उसके भी ज्ञाता रहते हैं। है? यह कैसे बैठे? सर्प को संडासी से पकड़ते हैं परन्तु जानते हैं कि इसे छोड़नेयोग्य है, घर में रखनेयोग्य नहीं–ऐसा मानते (हैं)। घर में रखने जैसा है? पकड़ेगा जरूर...! अरे...! होशियार आदमी तो हाथ से पकड़ता है। वह चलता हो, तब मुँह को ऊपर से यूँ पकड़ता है कि जिससे उसका

मुँह उसे काट न सके, फिर यूँ ही पकड़कर छोड़ आते हैं। ऐसे आदमी होते हैं। सर्प चलता हो, उसे मुँह के पास से पकड़ लेते हैं कि जिससे वह मुड़कर काट नहीं सके, फिर उसे बाहर में छोड़ आते हैं। उसको ज़हर चढ़ता नहीं, ज़हर उसको कुछ कर सकता नहीं। वैसे समकिती को राग पकड़ने पर, राग का ज़हर नहीं चढ़ता। वे राग को छोड़ने योग्य मानकर छोड़ (देते) हैं। सूक्ष्म बात है। प्रभु! दुनिया की पद्धति और (इस) मार्ग की पद्धति बिल्कुल अलग है।

इसके लिये तो बहुत सत्समागम चाहिए, शास्त्रवांचन चाहिए, मनन–(चिन्तन) चाहिए, ये सब प्रकार हों, तब तो चीज़ क्या है? वह इसके ख्याल में आता है। बाद में अनुभव तो उस राग से रहित होने पर होता है। यहाँ वही कहते हैं कि (समकिती को राग आता है) वह कमज़ोरी है, इसके भी वे ज्ञाता रहते हैं। यह 31 (वाँ बोल हुआ)।

सम्यग्दृष्टि को आत्मा के सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता, जगत की कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती। जिसे चैतन्य की महिमा एवं रस लगा है उसको बाह्य विषयों का रस टूट गया है, कोई पदार्थ सुन्दर या अच्छा नहीं लगता। अनादि अभ्यास के कारण, अस्थिरता के कारण अन्दर स्वरूप में नहीं रहा जा सकता इसलिए उपयोग बाहर आता है परन्तु रस के बिना–सब निःसार, छिलकों के समान, रस-कस शून्य हो ऐसे भाव से–बाहर खड़े हैं॥32॥

32 (वाँ बोल)। **सम्यग्दृष्टि को आत्मा के सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता,...** आहा...हा...! अन्तर आत्मा के आनन्द का जिसको स्वाद आया, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं, उसे धर्म की शुरुआतवाला कहते हैं, उसको (आत्मा के) आनन्द के सिवा बाहर कहीं नहीं सुहाता। आहा...हा...! 96 हज़ार स्त्रियाँ होती हैं तो भी उसमें उसे रस नहीं है। रस उड़ गया है, आ...हा...हा...! सर्प को पकड़ते तो है परन्तु छोड़ने के लिये पकड़ते हैं। वैसे (समकिती को) राग आता है, वह छोड़ने के लिये आता है; रखने के लिये नहीं आता। वह यहाँ 32 (वें बोल में कहते हैं)।

(सम्यग्दृष्टि को) आत्मा के सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता,... 'कहीं'

अर्थात् उन्हें पुण्य के परिणाम में भी अच्छा नहीं लगता। पाप के परिणाम में भी कमज़ोरी के कारण, हीनता देखकर उसके (भी) ज्ञाता रहते हैं। बाहर की किसी भी चीज़ में उन्हें उत्साह और वीर्य में प्रीति लगती नहीं। आहा...हा...! ऐसा सम्यग्दर्शन, बापू! जब इसकी बात भी सुनने नहीं मिली (तो) यह प्रयत्न कब करे? आहा...हा...!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन अलौकिक चीज़ है!

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी चीज़ है! उसमें फिर यह अफ्रिका और परदेश में। कहाँ देश और कहाँ परदेश!! सारे दिन केवल व्यवसाय में मशगूल! और इसमें पाँच-पचीस लाख महीने में या सालभर में मिलते हो, तो हो गया! उलझ जाता है...! हो गया...! आहा...हा...! हमने तो मुम्बई कई लोगों को–बड़े करोड़पतियों को देखा है न! उसी में उलझ जाते हैं। सुनने तो आये किन्तु रस पड़े नहीं। आहा...हा...हा...!

अभी एक (भाई) मुम्बई में आया था। वैष्णव है परन्तु इनके घर में सब महिलाएँ श्वेताम्बर जैन हैं। मुम्बई में है। नाम क्या? भूल गये।

मुमुक्षु : 'रामदास कीलाचन्द।'

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। 50 करोड़ रुपये। वैष्णव (है)। वहाँ जाते हैं, तब दर्शन करने आते हैं, व्याख्यान सुनने आते हैं। वैष्णव हो तो (क्या हुआ)? यहाँ तो तत्त्व की बात है, यहाँ कोई पक्ष की बात कहाँ है? सुनने आते हैं। एक बार पूछा, 'महाराज! हम तो वैष्णव हैं। (ईश्वर) कर्ता में मानते हैं न?' (हमने कहा) 'बापू! कर्ता मानते हो, लेकिन तुम्हारे में 'नरसिंह महेता' जुनागढ़ में हो गये, उन्होंने तो ऐसा कहा कि, 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चीन्यों नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी', 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व जान्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी, शुं कर्युं तीर्थ ने तप करवा थकी?' तीर्थ और तप आदि सब पुण्य परिणाम हैं। वे कोई भव के अभाव का कारण हैं नहीं। सुनते थे, सुनेंगे तो सही न! हमको कहाँ उनसे पैसे लेने थे? पचास करोड़वाला हो चाहे अरबवाला हो...! आया था बेचारा...!

मुमुक्षु : वास्तव में तो आप जैसे महात्मा यहाँ बहुत कम आते हैं। यहाँ अभी तक आये ही नहीं और यहाँ जमीन अच्छी है लेकिन इसकी जोताई नहीं हुई!

पूज्य गुरुदेवश्री : तो अच्छा न, बापू! बात तो ऐसी है, बापू! आहा...हा...!

मुमुक्षु : कोरी जमीन है। क्योंकि आप जैसे कोई नहीं पधारतें।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब की माँग थी, इसलिए आ गये...! कुदरती बनना होता है–क्षेत्र स्पर्शना...! वरना हम तो वहाँ काठियावाड़ में रहनेवाले...! और हमारी दुकान भी गुजरात में–पालेज। हमारा पूरा व्यापार सब गुजरात में! नहीं तो इस तरफ आने का तो कभी विचार भी नहीं था। लेकिन यहाँ तो कुदरती (आ पहुँचे) 'रायचंदभाई' के....।

मुमुक्षु : हमारे भाग्य से (आपका) आना हुआ!

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सही है! केशवलालभाई! यह सुनने मिले, वह भाग्यशाली है...! यह तो तीन लोक के नाथ की–वीतराग की वाणी है!! परमात्मा विराजमान हैं, उनकी यह वाणी है। बहिन वहाँ से आये हैं।

(पहले) कहा था, बहिन वहाँ नगरसेठ के लड़के थे परन्तु थोड़ा कपट हो गया था, इसलिए स्त्री हो गये। परन्तु पूर्व का सब याद आया है। कल की बात जैसे याद आये, वैसे सब बातें प्रत्यक्ष याद आयी हैं। लेकिन मर गये हैं! उन्हें बाहर में कहीं नहीं रुचता, कहीं नहीं सुहाता। उनके कोई पैर छूए तो (उसके) सामने देखने तक की दरकार नहीं। अन्दर आनन्द में मस्त... मस्त हैं!! लड़कियों ने वाणी लिख ली थी तो यह पुस्तक प्रसिद्ध हो गई। वरना बाहर आतीं भी नहीं! यूँ चलें तो मुरदे जैसे दिखें!! वे अन्दर की मस्ती में–आनन्द की मस्ती में, बाहर की सब रुचि ही उड़ गयी है। है देह स्त्री का! 66 वर्ष की उम्र... 66 वर्ष! परन्तु अन्दर में कोई उम्र लागू नहीं पड़ती! वे बहिन यह कहते हैं।

जगत की कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती। आ...हा...हा...! जिसको आत्मा का रस चढ़ा... आहा...हा...! उसे जगत की किसी चीज़ में रस नहीं आता। देवलोक में इन्द्र और इन्द्राणी का स्थान मिले तो भी उसमें उसे रस नहीं आता। समकिती मरकर स्वर्ग में ही जाते हैं, वैमानिक (देवलोक) में जाते हैं। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष और वैमानिक–(ऐसे) चार प्रकार के देव हैं। उसमें सम्यग्दृष्टि मरकर वैमानिक देव में ही जाते हैं। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष में वे नहीं जाते। मिथ्यादृष्टि हो और यदि विराधना हुई हो तो नीचे जाते हैं। समकितदृष्टि तो वैमानिक में ही जाते हैं।

अभी वैमानिक का देव जो है–सुधर्म देवलोक, 32 लाख विमान! पहला देवलोक

है। 32 लाख विमान (हैं)। एक विमान में असंख्य देव! उनका वह स्वामी आत्मज्ञानी है। देवलोक में 32 लाख विमान का स्वामी वह समकिती है!! परन्तु वह पर को छूने तक नहीं देता। (अर्थात्) उस देव को रानी और देवांगनाएँ सब पर (हैं), वह मेरा स्वरूप है नहीं। (ऐसे भिन्न रहते हैं)। देवलोक में से भगवान के पास सुनने आते हैं। ये चन्द्र, सूर्य हैं, इनके ऊपर सुधर्म देवलोक है। सुधर्म देवलोक, ईशान, सनतकुमार, महेन्द्र देवलोक है, है न? वहाँ से अभी भगवान के पास सुनने आते हैं। प्रभु के पास हैं। वह इन्द्र एकावतारी हैं! एक भव करके मोक्ष जायेगा। आ...हा...हा...! वैसे (बाहर से) देखें तो 32 लाख विमान हैं किन्तु अन्दर में लेप नहीं है (अर्थात्) मेरा कुछ नहीं है। मेरा मेरे में है, मेरा परिवार मेरे में है। राग आदि मेरा परिवार नहीं। बहिन का, अपने नहीं लिया? राग हमारा देश नहीं, यह पुण्य और पाप के परिणाम हमारा देश नहीं। अरे...! हम कहाँ परदेश में आ पहुँचे? वैसे ज्ञानी को राग में आने पर ऐसा लगता है। रस नहीं आता। आ...हा...हा...! पढ़ा था न अपने? पढ़ाया था। हम कहाँ आ पहुँचे? अरेरेरे...!

हमारा आनन्द का नाथ, इसमें रुचि व दृष्टि होने पर भी, अस्थिरतावश हम यह कहाँ परदेश में (आ पहुँचे)? पुण्य के परिणाम में आये तो कहते हैं, हम परदेश में आ पहुँचे हैं। यह हमारा परिवार नहीं। हमारा परिवार तो अन्दर में आनन्द, ज्ञान और शान्ति का सागर (है)। वह परिवार अन्दर पड़ा है। वह हमारा वतन है, हमारा स्थान है, वह हमारा घर है, वहाँ हमारा परिवार बसता है, वहाँ हम जाना चाहते हैं। आ...हा...हा...हा...! अज्ञानी को बाहर में स्त्री, पुत्र और ये (पैसे आदि) कुछ मिले इसमें बहुत रस आ जाता है। ऐसा रस ज्ञानी को नहीं होता। वह (यहाँ) कहते हैं।

जगत की कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती। जिसे चैतन्य की महिमा एवं रस लगा है... आ...हा...हा...! पहले ज्ञान तो करे कि यह अन्दर में चैतन्य भगवान पूर्णानन्द सत्चिदानन्द प्रभु है। इसकी दशा में–पर्याय में पुण्य-पाप के, मिथ्यात्व के भाव हैं, वस्तु में नहीं। वस्तु तो त्रिकाल निरावरण, अखण्ड एकस्वरूप अविनश्वर परमस्वभावमय निज परमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ। ऐसे समकिती की मान्यता ऐसी होती है। आहा...हा...!

वही यहाँ कहते हैं, **जिसे चैतन्य की महिमा एवं रस लगा है, उसको बाह्य**

विषयों का रस टूट गया है,... आहा...हा...! जिसने दूधपाक खाया हो...! दूधपाक ही कहते हैं न? उसे लाल जुआर के छिलके की रोटी अच्छी नहीं लगती। जुआर दो प्रकार की होती हैं। हमें तो सबका अनुभव हुआ है न! एक सफेद जुआर–एक पीली (जुआर)। इसके ऊपर के छिलके पीले होते हैं। हमने तो स्थानकवासी में दीक्षा ली थी, इसलिए कहीं भी आहार लेने के लिये जाते थे। तो एक बार विरमगाम जाते हुए (बीच में) गाँव आया (तो वहाँ) पीली (जुआर के) छिलके की रोटी मिली! बनिये का घर नहीं था, तो उसके यहाँ गये तो ऐसा मिला। लेकिन जिसने दूधपाक का रस चखा हो, उसे पीली जुआर के छिलके की रोटी में रस नहीं आता। वैसे (जिसको) आत्मा का रस लगा, उसे राग में रस नहीं आता। आ...हा...हा...!

एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। जिसको पर का रस है, उसे आत्मा का रस नहीं आता और जिसे आत्मा का रस है, उसे पर का रस नहीं आता। राग आता है परन्तु रस आता नहीं। उसमें एकाकार नहीं हो जाता, ऐसा दो के (बीच) अन्दर अन्तर रहता है। आहा...हा...! है? **(उसको) बाह्य विषयों का रस टूट गया है,...**

कोई पदार्थ सुन्दर या अच्छा नहीं लगता। आहा...हा...! इन्द्र और इन्द्राणी का पद भी अच्छा नहीं लगता। **अनादि के अभ्यास के कारण, अस्थिरता के कारण अन्दर स्वरूप में नहीं रहा जा सकता...** भान होने के बावजूद भी, स्वरूप में उपयोग जमता नहीं है, तब राग आता है–शुभराग आता है, अशुभराग आता है। यह कहते हैं।

उपयोग बाहर आता है परन्तु रस के बिना–सब निःसार, छिलकों के समान, रस-कस शून्य हो... आहा...हा...! मिथ्यादृष्टि को संसार का रस चढ़ गया होता है। आहा...हा...! वह भले शुभराग करे परन्तु उसका रस उसे चढ़ गया है। आत्मा का रस उड़ गया है, उसके पास आत्मा का रस है ही नहीं। और आत्मा का जिसे रस है, उसे इन छिलकों से रस उड़ गया है। है?

परन्तु रस के बिना–सब निःसार, छिलकों के समान,... आहा...हा...! **रस-कस शून्य हो – ऐसे भाव से–बाहर खड़े हैं।** धर्मी बाहर में ऐसे रस–कस रहित भाव में खड़े रहते हैं। भाव आते हैं (जरूर), शुभ आये; अशुभ भी आये, आर्तध्यान हो, फिर

भी वे भीतर में निर्लेप रहते हैं। इसके कर्ता–भोक्ता नहीं होते। ऐसी बात है, प्रभु ! आहा...हा... ! यह 32 (वाँ बोल) हुआ।

'जिसे लगी है उसी को लगी है' ....परन्तु अधिक खेद नहीं करना। वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है; शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जायगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जायगा। इसलिए एकदम जल्दबाजी नहीं करना। मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है; साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है, सन्तोष नहीं होता। अभी मुझे जो करना है वह बाकी रह जाता है–ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है, इसलिए बाहर कहीं उसे सन्तोष नहीं होता; और अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती, इसलिए उलझन तो होती है; परन्तु इधर–उधर न जाकर वह उलझन में से मार्ग ढूँढ़ निकालता है॥33॥

(33 वाँ बोल) **'जिसे लगी है, उसी को लगी है'....** आहा...! है? **'जिसे लगी है, उसी को लगी है' ...परन्तु अधिक खेद नहीं करना।** बहुत खेद न करना कि अरर्र...! क्यों जल्दी से नहीं होता? धीरज रखना... धीरज रखना...! धैर्य रखना। **वस्तु परिणमनशील है,...** पर्याय परिणमती है। **कूटस्थ नहीं है;...** कूटस्थ अर्थात् बदले नहीं, ऐसी दशा नहीं है। अतः **शुभाशुभ परिणाम तो होंगे।** शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। **उन्हें छोड़ने जायगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जायगा।** सूक्ष्म बात है थोड़ी !

(क्यों ऐसा कहा?) क्योंकि तुझे दृष्टि की खबर नहीं है और शुभाशुभभाव पर लक्ष्य करके छोड़ने जायेगा (तो वैसे) नहीं छूटेंगे। (तो) शुष्क हो जायेगा। (क्योंकि) अन्तर (स्वरूप) की दृष्टि हुई नहीं। आहा...हा...! भगवानजीभाई ! सूक्ष्म बात है, भाई !

यह तो लड़कियों के बीच अनुभव की थोड़ी वाणी निकल गयी और बाहर आयी है। वरना तो ऐसी बात बाहर आती नहीं। बहिन तो अन्दर में समा गये हैं! यह देह छूटकर वैमानिक में जायेंगे। वैमानिक देव होनेवाले हैं। स्त्रीपना नष्ट हो जायेगा।

वैमानिक में पुरुषदेव होनेवाले हैं। सब निश्चित हो गया है। आहा...! रस बिना सब निःसार है। आहाहा!

(यहाँ कहते हैं) **'जिसे लगी है, उसी को लगी है' ....परन्तु अधिक खेद नहीं करना। (वस्तु) परिणमनशील है, (कूटस्थ नहीं...) अतः शुभाशुभ परिणाम तो होंगे।** शुभाशुभ परिणाम होते हैं। **उन्हें छोड़ने जायगा...** उस पर लक्ष्य करने जायेगा (तो) नास्तिक हो जायेगा। वह तो यहाँ (स्वरूप की) दृष्टि होगी तो शुभाशुभ (परिणाम) छूटेंगे परन्तु तूं शुभाशुभ पर लक्ष्य रखकर छोड़ने जायेगा तो शुष्क हो जायेगा। थोड़ी सूक्ष्म बात कर दी है। क्या कहा?

शुभ और अशुभ परिणाम होंगे। उन्हें छोड़ने जायेगा (अर्थात्) उन पर लक्ष्य करके छोड़ने जायेगा तो शून्य हो जायेगा। क्योंकि सम्यग्दर्शन है नहीं, आत्मा का रस आया नहीं और शुभाशुभ परिणाम छोड़ने जायेगा तो शून्य हो जायेगा। आयेंगे (जरूर लेकिन) घबराना नहीं। शुभाशुभ परिणाम आयेंगे (परन्तु) घबराना नहीं। इससे हटकर अन्दर में जाने का प्रयास करना। आ...हा...हा...! थोड़ी सूक्ष्म बात की है। चन्दुभाई!

उन्हें छोड़ने जायगा तो शून्य (अथवा) शुष्क हो जायगा। आत्मा की दृष्टि हुई नहीं हो और अकेले शुभाशुभ परिणाम छोड़ने जायेगा तो शुष्क हो जायेगा। थोड़ी सूक्ष्म बात है! अन्दर की अनुभव की बात है। आ...हा...हा...! शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव हो, तब तो शुभाशुभ (परिणाम) भिन्न ही पड़े हैं। परन्तु उसकी दृष्टि अभी हुई नहीं, और तूं एकदम शुभाशुभ को छोड़ने जायेगा, (वैसे) शुभाशुभ को छोड़ने जायेगा (तो तेरी) दृष्टि तो आत्मा पर है नहीं, (तो) शुष्क हो जायेगा। समझ में आया? आहा...! शून्य हो जायेगा...! शुभाशुभ छोड़ने जायेगा (और) अभी शुभाशुभ से रहित आत्मा की दृष्टि तो तुझे हुई नहीं (तो तूं) शून्य हो जायेगा। थोड़ी सूक्ष्म बात की है।

कल आयी थी? परसों (आयी थी)? वह 21 वाँ बोल। 21 वाँ बोल...! चैतन्य के परिणाम–शुद्ध परिणाम हुए और सिद्धगति न हो (तो) जगत शून्य हो जायेगा। शुभाशुभ परिणाम हुए और उसकी गति में नरक या स्वर्ग न हो (तो) शून्य हो जायेगा। – (वह) गति शून्य हो जायेगी। गति रहित यह जगत भी शून्य हो जायेगा और परिणाम हुए, इनका फल

यदि नहीं आया तो परिणाम झूठे साबित होंगे, (उस) द्रव्य का ही नाश हो जायेगा। तेरा द्रव्य ही नहीं रहेगा! आहा...हा...हा...! थोड़ी अनुभव की बात हुई है...!

तूं मात्र पर को देखने जायेगा और स्व की खबर नहीं तो शुष्क हो जायेगा। चन्दुभाई! यह वाणी थोड़ी सूक्ष्म है। शुभ-अशुभ से रहित शुद्ध चैतन्य की दृष्टि हो, तब तो शुभाशुभ भिन्न ही पड़े हैं, इसलिए छोड़ने जायेगा तो छूट जायेंगे। परन्तु जब दृष्टि वहाँ है नहीं, पूरा अस्तित्व जो परमात्मस्वरूप है, वह अस्तित्व तो श्रद्धा में–सत्ता में आया नहीं और शुभाशुभ को छोड़ने जायेगा तो रहेगा क्या? (वैसे) छोड़ने जायेगा तो शुष्क हो जायेगा या शून्य हो जायेगा। सूक्ष्म बात है। समझ में आता है इसमें?

मुमुक्षु : बहुत पकड़ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से कहते हैं। अपने कहाँ कोई (जल्दी है)...! भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध है, इसकी दृष्टि की नहीं और शुभाशुभ परिणाम को छोड़ने जायेगा तो, शुद्ध में तो आया नहीं (और) शुभाशुभ छोड़ने जायेगा तो शून्य हो जायेगा। शुभाशुभ रहित अर्थात् तू आत्मा ही नहीं है – ऐसा हो जायेगा। शुभाशुभ रहित तूं शुष्क हो जायेगा या शून्य हो जायेगा। शुभाशुभ रहित (होने जाएगा) और यहाँ द्रव्य पर दृष्टि तो है नहीं (और ऐसे) शुभाशुभ छोड़ने जायेगा तो शून्य हो जायेगा। शून्य हो जायेगा शून्य...!

मुमुक्षु : शुभाशुभ का अभाव तो होगा ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव तो (स्वरूप की) दृष्टि करे तो अभाव हो। यहाँ तो (कहते हैं) दृष्टि की नहीं और छोड़ने जायेगा तो शून्य हो जायेगा।

मुमुक्षु : शून्य कैसे हो जायेगा? क्योंकि शुभाशुभ तो कायम रहेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही यहाँ पर कहते हैं! शुभाशुभ परिणाम को शुद्ध स्वभाव के लक्ष बिना छोड़ने जायेगा, तो रहेगा क्या? शुद्ध तो दृष्टि में है नहीं (और) शुभाशुभ छोड़ने जायेगा तो शून्य हो जायेगा, शुष्क हो जायेगा। सूक्ष्म बात है! आ...हा...हा...! धीरे से बात को (समझना), बापू! यह वार्ता नहीं है, प्रभु! यह तो आत्मा के अन्तर की बातें हैं। आ...हा...हा...हा...! क्या कहा?

शुद्धस्वरूप की दृष्टि तो हुई नहीं और घबराहट में शुभाशुभभाव को छोड़ने जायेगा

तो यहाँ शुद्ध (स्वरूप की दृष्टि) है नहीं (और) शुभाशुभ को छोड़ने जायेगा तो शुष्क हो जायेगा या शून्य हो जायेगा। आहा...हा...! सूक्ष्म बात रखी है थोड़ी, सूक्ष्म बात है थोड़ी! पण्डितजी!

दो अस्तित्व हैं। एक त्रिकाल (स्वरूप का) अस्तित्व और एक पुण्य-पाप का अस्तित्व। अब कहते हैं कि तुझे त्रिकाल अस्तित्व को जानने की इच्छा हो तो जानने जा, परन्तु जानने से पहले, जाने बिना अकेले शुभाशुभ को छोड़ने जायेगा तो शुद्धता हाथ नहीं लगेगी, शुभाशुभ नहीं छूटेंगे (और) शून्य हो जायेगा, शुष्क हो जायेगा। आ...हा...हा...! सूक्ष्म बात है थोड़ी।

बहिन को अन्तर से बात आयी है। 64 लड़कियों के बीच यह बात की थी। आ...हा...हा...! क्या कहा यह?

वस्तु परिणमनशील है,... (इसलिए) शुभाशुभ (परिणाम) होंगे। **कूटस्थ नहीं है;...** (इसलिए) परिणमन न हो, वैसा नहीं। परिणमन तो होगा। **शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जायेगा तो...** (आत्मा की) लगन लगे बिना (छोड़ने जायेगा) आहा...हा...! **तो शून्य अथवा शुष्क हो जायेगा। इसलिए एकदम जल्दबाजी नहीं करना।** धीरे से आत्मा के प्रति झुकने का प्रयास करना। परन्तु आत्मा (के प्रति झुकने के लिये) प्रयत्न न करके, शुभाशुभ को छोड़ने जायेगा वहाँ, न तो आत्मा रहेगा और ना ही शुभाशुभभाव! शुष्क हो जायेगा! समझ में आया इसमें? बहिन की वाणी तो अनुभव की है! आहा...!

अन्तर (की) चीज़ को तो देखी नहीं और घबराता है कि 'अरर्र...! अब ये शुभाशुभ छूट जाये।' परन्तु अन्तर की दृष्टि तो हुई नहीं, इसके प्रति का झुकाव भी नहीं और शुभाशुभ छोड़ने जायेगा, तो यहाँ शुद्ध (स्वरूप का लक्ष्य) तो है नहीं और शुभाशुभ छोड़ने जायेगा, वहाँ शुभाशुभ रहित शुष्क हो जायेगा, शून्य हो जायेगा। तेरा आत्मा ही नहीं रहेगा। आ...हा...हा...! सूक्ष्म बात आयी है थोड़ी! उन परिणाम जैसी आयी है (21 वाँ बोल)। चैतन्य के परिणाम का फल न आवे तो जगत शून्य हो जायेगा। आया था न? वैसी यह बात है। आ...हा...हा...!

(अब कहते हैं) **मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है; साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है,...** है? मुमुक्षु जीव (अर्थात्) आत्मा की जिसको पिपासा लगी हो, वैसा मुमुक्षु जीव, **उल्लास के कार्यों में भी लगता है; साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है,...** (कि) यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... मेरी वस्तु भिन्न है। ऐसा खटका लगा ही रहे तो सम्यग्दर्शन पाने का लायक होता है। आ...हा...हा...! सूक्ष्म बात है थोड़ी। स्थूल दृष्टिवाले को समझना मुश्किल पड़े ऐसा है। परन्तु यह बात अन्दर से आयी है। आयी वैसी रखनी तो पड़े ही न! आहा...हा...!

धर्मी को (उल्लास के) कार्यों में जुड़े तो भी अन्दर से गहराई में खटका रहा ही करता है। शुभाशुभ परिणाम है, वह (मेरा स्वरूप) नहीं, मेरी चीज़ तो भिन्न है। (ऐसा) खटका तो अन्दर रहा ही करता है। आ...हा...हा...! **सन्तोष नहीं होता।** थोड़ा-सा शुभ घटाया, इसलिए सन्तोष नहीं होता, खटका रहा ही करता है कि इस शुभ से भी छूटकर अन्दर में जाऊँ, वह (सच में) मेरी चीज़ है। शुभ (से) छूटकर भी अन्तर में जाना-वह मेरा स्वरूप है। वह मेरा निज देश और मेरा निज घर है। वह घबराता नहीं। एकदम से न जाए तो धीरे से राग का आदर छोड़कर अन्दर (स्वरूप) के आदर में जाये। आ...हा...हा...!

अभी मुझे जो करना है, वह बाकी रह जाता है– मुमुक्षु को ऐसा है-रागादि घटाने जाये और घटे नहीं और दृष्टि न हो, तो उसको ऐसा लगता है कि मुझे तो अभी बहुत कुछ करना बाकी है। राग घटाकर स्वरूप में जाने का बहुत करने का बाकी है। शुभभाव किया, इसलिए मैंने बहुत कर लिया; इसमें कुछ नहीं है। भाषा थोड़ी (सूक्ष्म है)।

ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है,... मुमुक्षु जीव को (अर्थात्) जिसको आत्मा की दरकार है, उसको ऐसा खटका तो सदा-निरन्तर रहा ही करता है। आहा...हा...! **इसलिए बाहर कहीं उसे सन्तोष नहीं होता;...** बाहर में दिखता है परन्तु कहीं भी उसे सन्तोष नहीं होता। मेरे घर के अलावा इस पर में मेरा स्वरूप नहीं है। आ...हा...हा...!

और अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती,... क्या कहा? **गहरा खटका निरन्तर**

लगा ही रहता है, इसलिए बाहर कहीं उसे सन्तोष नहीं होता; और अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती, इसलिए उलझन तो होती है; परन्तु इधर–उधर न जाकर... (अर्थात्) जल्दबाजी करके उलझन में न आकर धीरे-धीरे, धैर्य से राग से रहित होने का अन्दर प्रयत्न करना। एकदम उलझन में नहीं आ जाना। (ऐसा) कहते हैं। राग रहित एकदम नहीं हुआ जाये तो घबराना नहीं। धीरे से, इसे आत्मा के लक्ष्य में जाने के लिये धीरज से काम लेना। वरना उलझन में जाएगा तो मूढ़ हो जायेगा, आहा...हा...! यह तो जिसे अन्दर का खटका लगा हो, उसकी बातें हैं, बापू! यह कोई वार्ता–कथा नहीं है, आहा...!

(इसलिए कहते हैं) **इसलिए उलझन तो होती है; परन्तु इधर–उधर न जाकर वह उलझन में से मार्ग ढूँढ़ निकालता है।** राग टूटे नहीं, अन्दर में जाना होवे नहीं; (इसलिए) उलझन होती है परन्तु उलझन में से मार्ग ढूँढ़ लेता है। उलझन में आकर वहाँ मूढ़ नहीं हो जाता। धीरे से... अन्दर वस्तु है, शुद्ध चैतन्य है, राग की मन्दता एकदम मेरे से छूटती नहीं है परन्तु धीरे से अन्दर में जाने पर वह राग हट जायेगा और आत्मा का अनुभव होगा, ऐसा (सोचकर) उसे उलझन में नहीं रहना चाहिए। आ...हा...हा...! समझ में आया यह? यह सूक्ष्म बात आ गयी है।

(कहते हैं) **इधर–उधर न जाकर वह उलझन में से मार्ग ढूँढ़ निकालता है।** कठिन पड़ता (हो, ऐसा) इसे लगता हो तो भी घबराता नहीं है। धीरे से राग को मन्द करके आत्मा की शुद्धता के प्रति झुकने (का) प्रयत्न भी छोड़ना नहीं है और उलझन में भी नहीं रहना है। उसके (स्वरूप) के प्रति जाने का प्रयत्न छोड़ना भी नहीं और राग आये व नहीं छूटता हो तो उलझन में भी रहना नहीं। ऐसी दशा की बात यहाँ की है। ऐसी मध्यमदशा, सम्यग्दर्शन पाने के पहले ऐसी दशा होती है, परन्तु ऐसी दशावन्त अन्दर में जाता है, तब राग की उलझन उसे मिट जाती है और आत्मा का ज्ञान हो जाता है।

(विशेष कहेंगे....) (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)